अध्याय : 4

मोहन राकेश के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता

अध्याय : 4

मोहन राकेश के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता

"मेरी दृष्टि में नाटक की आत्मा उसमें सन्निहित द्वन्द्व है - आज की परिस्थिति में व्यक्ति और परिवेश के बीच का द्वन्द्व, उसको हम आज के नाटक का मूल स्वर कह सकते हैं।"

- मोहन राकेश

साहित्य का संबंध मन से रहा है। इसलिए सूर, तुलसी के काव्य में भी मनोविज्ञान की झलक मिलती है। मानव-हृदय के गूढ रहस्यों को खोलने का प्रयत्न किया गया है। आधुनिक काल में मनोविज्ञान में मन का शास्त्र के रूप में अध्ययन होने लगा। सिग्मंड फ्रायड़ ने मनुष्य के व्यवहार का उसके प्रकट मन के साथ, अचेतन मन के संबंध को, व्यक्तित्व की उलझनों को स्पष्ट किया है। यथार्थवाद के प्रवाह में इनका महत्व बढा और व्यक्ति केंद्र बना। मनुष्य का व्यवहार, आचरण की प्रेरणा देखी जाने लगी। इसीसे मानसिक जटिलता सामने आयी अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप को प्रधानता मिलने लगी। व्यक्ति का अध्ययन करते समय अचेतन, अर्द्धचेतन मन का, दमित इच्छा का आत्मपीड़ा, परपीड़ा, वैयक्तिक विकृतियों का, बेबसी ग्रस्त जीवन का विचार किया जाने लगा। स्वाभाविक है, इसमें पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को प्रधानता मिलने लगी। घटना के मूल में रहनेवाली मानसिक कारणों की व्याख्या होने लगी। मानसिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण होने लगा। राकेशजी ने अपने नाटकों के पात्रों के माध्यम से मानव मन को समझने, समझाने की कोशिश की है। इसमें आत्मानुभूति महत्वपूर्ण रही है। इसप्रकार का चित्रण करके राकेशजी ने नाटक को एक नया आयाम दिया है।

बीसवीं शताब्दि की ज्ञान की मनोविज्ञान यह नयी शाखा है। यह शाखा अन्य शाखाओं से कुछ लेती है और उन्हें देती भी रही है। इसमें जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को हल करने की शक्ति है। फिर वह विश्वयुद्ध की समस्या हो, मजदूरों की समस्या हो या पारिवारिक जीवन से संबंधित हो सबकी तह में पहुँचकर वह समाधान देने की कोशिश करती है। इस शाखा ने मार्क्स की तरह सभी विश्वसाहित्य को प्रभावित किया है। प्रारम्भ में हम उसका स्वरूप देखेंगे।

आरम्भ में मनोविज्ञान को मन का विज्ञान माना जाता था। बीसवीं शताब्दि में यह परिभाषा बदल गयी। मनोविज्ञान के अन्तर्गत मन की विविध क्रियाओं तथा शक्तियों और मनुष्य के स्वभाव एवं कार्यों की मूल प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता है। इसलिए आज इसे व्यवहार का विज्ञान भी कहा जाता है। मनोविज्ञान, "व्यवहार का वैज्ञानिक अनुसंधान" है।

मानव विचारशील प्राणी है। वह सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को जानना और समझना चाहता है। मानव का सबसे अधिक अभिरूचि का केन्द्र है मानव। मानव मानव का अभ्यास करना चाहता है क्योंकि दूसरे मानव के अध्ययन से अपने को समझने में सहायता मिलती है। इस प्रकार मानव के प्रति मानव की चिन्ता को समझने, देखने और बूझने के प्रयत्न को मनोवैज्ञानिक अध्ययन कहते हैं। किसी व्यक्ति की कहानी के द्वारा उस व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व पर उसके मानसिक व्यापार की रहस्यात्मकता पर प्रकाश पड़ता है।

सिगमण्ड फ्रायड़ जो स्नायु-रोग चिकित्सक थे, जिन्होंने रोग चिकित्सा करते समय यह अनुभव किया कि ऐसी इच्छाएँ जिनका ज्ञान हमें नहीं रहता हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है। अर्थात मानव के मन में इच्छा, भय आदि भावनाओं की यादें मन में स्थित होती है यहीं दमित भावनायें हमारे व्यवहार को प्रभावित करती हैं। फ्रायड़ के शिष्य जुंग और एडलर की मान्यता है कि मानव को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है, अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। अन्तर्मन के स्पंदनों का आविष्कार मानव के क्रिया-व्यापार पर होता है। उदा·क्रोध मानव की अभिव्यक्त भावना है लेकिन क्रोध का मूल कारण मन में दबा होता है। मनोविज्ञान अन्तर्मन में छुपे

मूल कारण का अनुसंधान करता है।

मनुष्य का मनोविज्ञान सरल नहीं है। मनुष्य का मन जटिल है, उस पर बहुत सारे बोझ चढ़ते रहते हैं। बदलते युग के विकास के साथ हमारे जीवन में, हमारी मानसिक प्रक्रिया में और हमारे रूचि में जटिलता आ गयी है। आज का जीवन वैषम्यपूर्ण हो गया है। सभी इच्छायें पूरी नहीं हो पाती है। इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। यही आशा और इच्छा हमारे मन में द्वन्द्व निर्माण करती है। मानव मन की भावनाये अभिव्यक्त करने के लिए साहित्य का सहारा लेता है।

सफल मनोवैज्ञानिक साहित्यकार स्वयं अपने व्यक्तित्व के प्रति भी तटस्थ मनोवैज्ञानिक दृष्टि रखता है, हानि लाभ से ऊपर उठकर वह अपनी मूल प्रवृत्तियों को पहचानने का प्रयत्न करता है। तटस्थ दृष्टि वाला साहित्यकार पात्रों द्वारा दमित इच्छाओं को उजागर करता है। न अपना न पराया इसी दृष्टि से नर-नारी वर्णन करता है।

<u>आषाढ़ का एक दिन</u>

परिवर्तन मानव सभ्यता की नियति है। विचार, रहन-सहन एवं क्रिया-कलाप की दृष्टि से समाज में निरन्तर परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन की क्रिया द्वन्द्वात्मक है, क्योंकि मानव समय के साथ अन्य समस्या और संस्कृति के सम्पर्क में आकर नवीन उपलब्धियाँ प्राप्त करता है। एक ओर परम्परागत विचार है तो दूसरी ओर नवीन उपलब्धियाँ होती हैं। दोनों के बीच मानव मानसिक द्वन्द्व को झेलता रहता है। दोनों द्वन्द्व के माध्यम से नवीन विचार प्रणाली निर्माण होती है जिससे समाज में गुणात्मक परिवर्तन होता है। इसप्रकार किसी भी परिवर्तन के पीछे उसका अतीत छिपा रहता है। अतीत की बुनियाद पर वर्तमान खड़ा रहता है। अतीत इतिहास की वस्तु बनता है।

परिवर्तन तो गतिशील क्रिया है। प्राचीन मूल्यों में अनेक ऐसे विचार मान्यताएँ होती हैं जिनके आधार पर हमारा भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। साहित्यकार ऐसे ही उच्च पारंपारिक मूल्यों को ऐतिहासिक, पौराणिक रचना के माध्यम से हमारे सामने उपस्थित करता है, जो वर्तमान की समस्याओं के संघर्ष में सहायक हो सके। प्रसादोत्तर काल के नाटककारों ने इतिहास के विषयों का उपयोग नहीं किया है, वर्तमान जीवन की समस्याओं को अपने नाटक का विषय बनाया है। लेकिन इतिहास का उपयोग साहित्य में जहाँ कहीं किया गया है, पाठकों के लिये प्रेरणास्रोत बन गया है। आधुनिक हिन्दी नाटककारों ने इतिहास का आधुनिकता से सुंदर मेल बिठाया है। मोहन राकेश ऐसे नाटककारों में से एक हैं। राकेश का प्रथम नाटक "आषाढ़ का एक दिन" इतिहास के नाममात्र आधार पर लिखा गया है। ऐतिहासिकता के माध्यम से आधुनिकता का बोध देने में यह सफल नाटक है। "आषाढ़ का एक दिन" मिथकीय नाटक है।

इस नाटक का नायक कालिदास है। यह कालिदास शत प्रतिशत ऐतिहासिक कालिदास नहीं है। ऐतिहासिकता का नाममात्र उपयोग किया गया है। यह कालिदास सर्वसामान्य व्यक्ति है। मोहन राकेश के कालिदास पर आलोचकों का आक्षेप था कि इतना महान व्यक्ति इतना दुर्बल क्यों है ? स्वयं राकेश ने अपनी भूमिका में स्पष्ट रूप से कहा कि यह असामान्य व्यक्तित्व का कालिदास नहीं बल्कि सर्वसामान्य व्यक्ति हैं। इसे इतिहास के चौखटे में फिट किया गया है।

मोहन राकेश ने जीवन में जो कुछ भोगा, जिन समस्याओं से संघर्ष किया उन्हीं समस्याओं को कालिदास सुलझाने की कोशिश कर रहा है। जिस तरह प्रसादजी ने इतिहास का सहारा लेकर अपने युग को रोमांटिक दृष्टि से उजागर किया उसी तरह राकेश ने कालिदास को इतिहास की पृष्ठभूमि देकर राकेश कालीन युग में छोड़ दिया है। यह कालिदास आधुनिक समस्याओं से संघर्ष कर रहा है। साहित्यकार जो सृजन करता है उसमें उसके व्यक्तित्व और विचारों की अभिव्यक्ति होती है। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक के माध्यम से राकेश ने अनेक संकेत दिये हैं।

कालिदास एक ग्रामयुवक है, गायें चराता है, और मामा के घर आश्रित बनकर जीवन व्यतीत करता है। कालिदास मन से संवेदनशील और भावुक है, कालिदास कवि है। गाँव में गाय चराना बड़ी उपलब्धि है और कवित्व करना गौण समझा जाता है। इसलिये मामा मातुल, अम्बिका सभी उसके कवि व्यक्तित्व पर आक्षेप करते हैं। कितनी विसंगति है यह पशुपालन जैसा काम और संवेदनशील मन में। इस परिस्थिति और परिवेश से वह निरीह प्राणी की तरह जूझता है। मल्लिका कालिदास की प्रियतमा है, प्रतिभा है। सभी गाँव में एक ही व्यक्ति है, मल्लिका, जिसे कालिदास के कवि होने का अभिमान है। मल्लिका कालिदास को प्रेरणा देती है। कालिदास को लोक अपवादों के बावजूद साथ देती है। कालिदास के साथ पर्वतों पर घूमती है, वर्षा में भीगती है। कालिदास मल्लिका के लिये सबसे बड़ा विश्वास है। जब राजकीय सम्मान पाने के लिए कालिदास को उज्जयिनी से आमंत्रित किया जाता है, इसी समय बाकी सारे धन और प्रसिद्धि की हवस से उसे भेजना चाहते हैं। सिर्फ मल्लिका कवि मन को जानती है और प्रतिभा विकास के लिये अपने दिल पर पत्थर रखती है। मल्लिका त्यागमयी मूर्ति है। अपने प्रेम के उज्जवल भविष्य के लिये स्वयं अपना जीवन अंधेरे में धकेलती है। कालिदास उज्जयिनी नहीं जाना चाहता उसे परिवेश से कट जाने का भय है।

संवेदनशील कलाकार के लिये उसका परिवेश महत्वपूर्ण होता है। परिवेश से जो कलाकार अर्जित करता है वही साहित्य द्वारा समाज को देता है। राकेश का विभाजन में झेला बँटवारे का दर्द यहाँ व्यक्त होता दिखायी देता है। भारत के विभाजन के पश्चात स्वतंत्र भारत को शरणार्थियों की समस्या का सामना करना पड़ा। शरणार्थियों के सामने रोटी कपड़े की समस्या के साथ अन्य कई समस्या का सामना करना पड़ा। परिवेश से उखड़कर उस जग आकर बस जाना असान काम नहीं है। राकेश इस परिस्थिति से गुजर चुके थे। परिवेश से कट जाने की पीड़ा कालिदास के माध्यम से व्यक्त की है। आखिर कलाकार का मन एक नाजूक पौधे के समान ही होता है एक जगह से निकालकर दूसरी जगह लगायेंगे तो उसके फलने-फूलने की उम्मीद नहीं के बराबर होती है। पौधे की जड़ और कवि की आत्मा

एक ही है।

मल्लिका कवि कालिदास से सिर्फ प्रेम नहीं करती वह प्रेम की शक्ति जानती है। मल्लिका के प्रेम का अभाव महसूस कर कालिदास उज्जयिनी जाने के प्रति उदासीनता व्यक्त करता है - "मुझे हृदय से उत्साह का अनुभव नहीं होता।"[1] मल्लिका उसे जाने के लिए प्रेरित करती है। मन में अनुत्साह की भावना लेकर कालिदास उज्जयिनी आ जाता है।

उज्जयिनी में आकर बिना किसी आकांक्षा के वह गुप्त सम्राट का राजकवि और फिर कश्मीर का शासक बन जाता है। यहाँ आकर कालिदास अपना गाँव, पर्वत, मल्लिका का सहज स्वाभाविक प्रेम भूलता नहीं है। जो रचनायें नवसर्जना के रूप में उद्‌घाटित होती है वही असल में पूराने परिवेश से प्राप्त स्फूर्ति है। जो कुछ परिवेश से प्राप्त किया था परिवेश से कटकर उसी प्रेरणा के सहारे साहित्य लिखा गया। इसमें नये परिवेश से मिली मौलिकता शामिल नहीं है। इस बात का कारण यह है कि, कालिदास को किसी आकांक्षा के बिना सम्मान और राज्यपद मिल गया। यहाँ राकेश आधुनिक युग के साहित्यकार और राजसत्ता के संघर्ष का बोध कर रहे हैं। कालिदास की तरह आधुनिक युग में ऐसे हजारो' संवेदनशील कवि या साहित्यकार हैं जो अनचाहे राजसत्ता से बँध गये हैं। राजसत्ता के पाश में मनुष्य अपना अस्तित्व भूल जाता है। वास्तव में "आषाढ़ का एक दिन" का कालिदास साहित्यकार की नियति का प्रतीक है। कालिदास धन संपन्न होता तो अपनी प्रियतमा के साथ अपना परिवेश भी पाता। धन की कमी उसे राज्याश्रय तक खींच लायी। यहाँ कालिदास एकदम अकेला है। सत्ता और आत्मीय संबंधों के विरोधाभास में जी रहा है। राकेश ने ऐतिहासिक मुखौटे के बावजूद आधुनिक पुरुष की विवशता को बड़े स्पष्ट और यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किया है। आज भी प्रशासन के भीतर प्रलोभनों की आसक्ति में बौद्धिक प्रतिभाओं को छटपटाते और टूटते कलाकार दीखते हैं। स्वतंत्र भावना की अभिव्यक्ति पर शासन या नौकरी, सत्ता का दबाव रहता है। सत्ता के मोह में आदमी कुछ नहीं कर सकता, अपनी अलग पहचान भूल जाता है। राकेश को नौकरी का बन्धन कतई पसन्द नहीं था। समय के साथ दौडते-दौडते अन्तर्मन

में छिपा संवेदनशील कलाकार थक जाता था। नौकरियों से त्यागपत्र देना सर्वसाधारण बात थी। नौकरी छोडकर वे पुनः नौकरी करते थे, इसका कारण था अर्थार्जन। जो कालिदास को विवश करता रहा। उसके प्रेम से परिवेश से उसे दूर ले गया।

जिस कार्य के लिये कालिदास उज्जयिनी आये थे, उच्चकोटि की रचनायें करने के लिये वही काम करने में असफल रहे। जो कुछ लिखा वह तो उनका अतीत था, नयी सर्जना तो हुई ही नहीं। शकुंतला, यक्षिणी सभी साहित्य की नायिकायें मल्लिका के भिन्न रूप थी। जो यथार्थ में बीत चुका था कालिदास ने वही दोहराया।

राकेश का सर्व साहित्य जीवन की यथार्थ का प्रतिबिंब है। राकेश अपने पात्र द्वारा यही बात कहना चाहते हैं, कि एक सृजनशील कलाकार उसकी स्थूल आवश्यकतायें और मन को एक साथ सम्हालने में असमर्थ होता है। स्थूल आवश्यकतायें अत्यावश्यक गरज होती है उदा·भूख, मकान और कपड़ा। इन आवश्यकताओं के बीच सामान्य आदमी अपने संवेदनशील मन की भावना को दबाकर जीवन व्यतीत करता है।

कालिदास के पद, प्रतिष्ठा के लिये अपना प्रेम, अपना कवि मन भी भूलना पड़ा। साहित्य निर्माण हुआ पर उसमें अपना व्यक्तिगत दर्द व्यक्त होता रहा। कालिदास मन-से भावुक था। एक बात यह भी है कि कालिदास में निर्णय लेने की क्षमता नहीं थी। मल्लिका ने जो कहा वही करता गया। अपना निर्णय लेने की क्षमता नहीं है, हमेशा दूसरों के ऊपर निर्भर रहता है।

समय किसी के लिये रूकता नहीं है। कालिदास समय के चक्र को उल्टा घुमाना चाहता है लेकिन यह बात असम्भव है। कालिदास इतना आत्म-सीमित है कि राज्यशासन, राजदुहिता प्रियंगुमंजिरी तथा ऐश्वर्य के भोग में मल्लिका को कुछ देर के लिये भूल जाता है। राज्यशासन से ऊबकर वापस अपने परिवेश में लौटना चाहता है। कालिदास का भ्रम है कि जिस हाल में वह सबकुछ छोड गया था शायद वैसा का वैसा सबकुछ होगा। समय तो बलशाली है। कालिदास सुरक्षित सुख चाहता है। वापस आने पर देखता है कि मल्लिका एक बच्चों की माँ बन

गयी है। यह कटु यथार्थ स्वीकारना इतनी सहज आसान बात नहीं है। कालिदास में परिस्थिति से संघर्ष करने की हिम्मत होती तो वह मल्लिका को फिर से अपनाता। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। कालिदास वापस लौट गया। यह कालिदास सामान्य व्यक्ति नहीं तो क्या है ? सामान्य व्यक्ति ऐसा सबकुछ करने से कतराता है जो नैतिकता के लिये हानिकारक है।

मल्लिका की माँ कालिदास के स्वभाव को जानती है क्योंकि यथार्थ के धरातल पर वह खड़ी है। अम्बिका मल्लिका का विवाह विलोम से करना चाहती है। लेकिन धनाभाव के कारण, मल्लिका कालिदास को चाहकर भी उससे विवाह नहीं कर सकती। दोनों प्रेम करते हैं पर परिस्थितिवश विवाह नहीं कर सकते। अंत में कालिदास संन्यास ग्रहण करता है। मन की टूटन उसे निराश बना देती है। कालिदास फिर वहीं आता है जहाँ उसका प्रेम और आस्था है। परिस्थिति पर किसीका वश नहीं चलता। कल्पना से भयंकर यथार्थ का सामना कालिदास को करना पड़ा और कालिदास टूटकर चूर-चूर हो गया।

"मैं अपने को सहारा देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा, समान रूप से दोनों क्षेत्र में अपने को बाँट दूँगा, परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थिति के हाथों बनता और प्रेरित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतिक्षा थी वह कल कभी नहीं आया, और मैं धीरे-धीरे खण्डित होता गया।"[2]

वास्तव में कालिदास की अपेक्षा मल्लिका संघर्षमय अवस्था से गुजरती है। मल्लिका कालिदास की प्रतिभा शक्ति है। समर्पित नारी का प्रतीक मल्लिका है। कालिदास के भविष्य के लिये अपना जीवन शून्य बना देती है। मल्लिका में निर्णय लेने की क्षमता के साथ-साथ संघर्ष करने की शक्ति है। अम्बिका से स्वयं कालिदास तक मल्लिका संघर्ष करती है। परिस्थिति के थपेडों में डगमगाती नहीं है। परंपरागत सामाजिक मूल्यों को तोड़ने का साहस उसमें है। खुलेआम कालिदास के साथ लोकापवाद झेलते घूमने फिरने में कोई गैर बात महसूस नहीं करती है। अपने प्रेम का खुलकर इजहार करती है। एक समय में नारी तुच्छ मानी जाती थी इस बात के मुकाबले में कालिदास के लिये जीवन शून्यवत करने वाली मल्लिका

आधुनिकता की कई सीढियाँ आगे चल गयी है।

अम्बिका और विलोम पहले से ही यथार्थ का सामना करते आये हैं। मल्लिका का भविष्य उन्हें ज्ञात था सो वे स्थितिप्रज्ञता से कटु यथार्थ स्वीकारते रहें। अम्बिका जब तक जीवित रही मल्लिका को सत्य से परिचय कराती रही। इस नाटक के पात्र ऐतिहासिकता के सहारे आधुनिकता व्यक्त करते हैं। पूरे नाटक में राकेश का व्यक्तित्व झलकता है।

मल्लिका

मल्लिका कालिदास की संगिनी, सखी एवं प्रिया है। मल्लिका नारी के मन का प्रतीक है। त्याग और प्रेमभाव नारी के मूल स्वभाव होते हैं। नारी जितनी कोमल हृदयी होती है उतनी ही ताकदवर होती है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, रजिया सुलतान ऐसी नारियाँ हैं जो वक्त आने पर समशेर लेकर परिस्थिति का सामना कर गयी। मल्लिका कोमल हृदयी और आत्मविश्वास युक्त नारी है। अपनी भावना को समाज या लोकोपवाद से ज्यादा महत्व देती है। कालिदास के साथ वर्षा में भीगने का आनंद लेने वाली मल्लिका अबोध कन्या है। अपने प्रेम और भावना पर अटल विश्वास करती है। यह चरित्र ऐसी नारी का है जो वक्त आने पर अपनी भावना को कठोर बनाती है और अपने सखा के पद पर फूल बिछाती है।

कालिदास की मानसिकता को मल्लिका अच्छी तरह जानती है। कालिदास के मन की कोमलता और निर्णय न लेने की क्षमता से परिचित है। कालिदास के उद्धार के लिए अपनी भावना को दबाकर उसे प्रशस्त मार्ग पर भेजती है। कालिदास को भलाई या प्रतिष्ठा में अपना त्याग भूल जाती है। मल्लिका अगर कालिदास को रोक लेती तो कालिदास उज्जयिनी न जाता। अपनी विरह भावना का प्रदर्शन नहीं करती, प्रेम से उसे समझाकर उज्जयिनी भेजती है, जहाँ कालिदास के उज्जवल भविष्य के दरवाजे खुले हैं।

मल्लिका में एक दो क्षण में निर्णय लेने की क्षमता है। "भावना में भावना का वरण" करने वाली यह ग्रामकन्या कालिदास की प्रतिभा है। पूरे आत्मविश्वास के साथ कालिदास को वह उज्जयिनी भेजती है। कालिदास से उसे कोई अपेक्षा भी नहीं है कि वह कुछ करें। कालिदास का उज्जयिनी जाना मल्लिका के लिए कष्टदायी था, पर वह चुप रही क्योंकि मल्लिका के त्याग में कालिदास का उज्ज्वल भविष्य छुपा था। मल्लिका ने अपने प्रेम के प्रति कठोरता से अपना कर्तव्य निभाया है। कालिदास के प्रतिष्ठा पा लेने के बाद मल्लिका का जीवन पूर्णतः अंधकारमय रहा है। इस बात से उसे कोई दुःख नहीं है। अपने प्रेम पर अड़िग विश्वास जो है।

पूरे नाटक में मल्लिका के नाराजगी का प्रदर्शन नहीं हुआ है। अपने दुर्भाग्य को वह कोसती नहीं है। परिस्थिति का अपने हिसाब से सामना करती रहती है। दिल में कालिदास का प्रेम सिंचती रहती है। मल्लिका को कालिदास की प्रतिष्ठा या ऐश्वर्य का कोई फायदा नहीं हुआ पर उसे जो आत्म-संतुष्टि मिलती रही, यह अलग बात है। कालिदास का हरिणशावक से प्रेम मल्लिका समझती है क्योंकि कालिदास के कोमल कवि मन का परिचय मल्लिका को ही है। कालिदास के लिए राजपुरूष से विवाद करती है। त्याग की मूर्ति है मल्लिका जो इतिहास के पन्नों पर प्रेम त्याग का अर्थ बनी रही।

कालिदास उज्जयिनी जाकर वहाँ के परिवेश में इतना उलझता जाता है कि मल्लिका के लिये उसके पास समय नहीं है। मल्लिका समझदार है यह बात प्रियंगुमंजिरी से ज्ञात होने पर भी शांत रहती है। जो कुछ हो रहा है उस बात से मल्लिका को कोई आपत्ति नहीं है, मल्लिका जानती है कि कालिदास का हृदय मल्लिका के लिए आहत है। कालिदास से मल्लिका को कोई शिकायत नहीं है, रोष नहीं, क्रोध भी नहीं। जीवन को सहजता से स्वीकारा है। कालिदास के जाने पर मल्लिका को चरितार्थ के लिए विलोम का सहारा लेना पड़ता है, वही विलोम जिससे एक समय मल्लिका नफरत करती थी। अपने जीवन को मल्लिका ने सहज स्वीकारा है, क्योंकि मल्लिका को अपनी आस्था पर आस्था है। अपने भावना में विश्वास है।

कालिदास में हुआ बदलाव मल्लिका के लिए कोई मायने नहीं रखता है। प्रेम, आस्था पर विश्वास करने वाली मल्लिका जीवन के प्रति उदासीन नहीं है, यथार्थ का सामना करती है। मल्लिका का प्रथम परिचय एक बालिका के रूप में होता है, जिसे लोक और जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानकारी नहीं है। सारे प्रदेश में सबसे सुशील, विनीत और भोली लडकी है। कालिदास को योग्य पथ प्रदर्शन करने वाली मल्लिका एक जिम्मेदार सहचारिणी का कर्तव्य निभाती है। अंत में समय के थपेडे सहन करने वाली माँ बन गयी है। मल्लिका का मुग्ध प्रेम, कालिदास के प्रति अटल विश्वास दिलाता है।

जीवन की स्थूल-अपेक्षाओं की उपेक्षा करने वाली मल्लिका जीवन के उत्थान पतन को आसानी से झेलती है। कालिदास के प्रस्ताव पर मौन प्रतीक्षा का उद्रेक नहीं होने दिया। दरअसल मल्लिका का हक बनता था कि कालिदास को खरी-खोटी सुनाये लेकिन ऐसा हुआ नहीं। अपने प्रेम का प्रदर्शन रोष से नहीं किया, उसमें संवेदन था, भावना से आहत व्याकुलता थी।

कालिदास का उत्कर्ष और सम्मानपूर्वक वापसी मल्लिका का सपना था। कालिदास का आधार था। कालिदास के वापस लौटने पर मल्लिका सिर्फ अपने बच्चो को गले लगाकर मूक रूदन करती है। इस बात से ज्ञात होता है कि सिर्फ वह बच्चो ही मल्लिका का एकमात्र भावनिक सहारा है, जिसके आधार पर उर्वरित जीवन वह काट लेगी। कालिदास के लिए मल्लिका ने स्वयं को मिटाया है, उसके विचार भी उच्च हैं। मल्लिका सोचती हैं कि "कालिदास को उज्जयिनी न भेजती तो बड़ा अनर्थ हो जाता, वे मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के बंधन में बँधे जाते।" मल्लिका पूर्ण-समर्पण का प्रतीक है। कालिदास और मल्लिका प्रेम करते हैं पर परिस्थिति उन्हें विवाह नहीं करने देती। मल्लिका खुद टूटकर कालिदास को बनाये रखना चाहती है इसलिए वह कहती है - "क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुम में देखती थी, और मैं आज यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोडकर संन्यास ले रहे हो ?" मल्लिका का विलोम से विवाह होता है और वह टूटती चली जाती है। वह अपनी परिस्थिति से समझोता कर नहीं पाती। कालिदास को सम्मान मिलता है, शासक भी बनता है पर अंत में संन्यासी बन जाता है और अंत में कहता है

"जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे धीरे खंडित होता गया, होता गया। और एक दिन - एक दिन मैंने अनुभव किया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ।" यह कालिदास और मल्लिका का परिस्थितिवश टूटना एक तरह से आज के मनुष्य का टूटना है जिससे राकेश अभिव्यक्ति दे देते हैं। यहाँ समाज के कारण व्यक्ति के विघटन की बात राकेश अपने जीवन के अनुभव से कहते हुए दिखायी देते हैं। राकेश का लेखक इसी तरह कल का इन्तजार करते-करते टूटता गया है।

लहरों के राजहंस

राकेश का साहित्य प्रामाणिक अनुभव होने का मुख्य कारण यह है कि भोगे हुए यथार्थ की यह काल्पनिक माध्यम द्वारा की गयी अभिव्यक्ति है। राकेश का व्यक्तित्व साहित्य में आसानी से खोजा जा सकता है। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक का नायक कालिदास स्वयं राकेश ही है। कालिदास ऐसे ही विडम्बनात्मक जीवन को झेल रहा है जो राकेश स्वयं झेल रहा है। कालिदास में हमें सामान्य व्यक्ति की झलक इसलिए दिखायी देती है क्योंकि कालिदास में और राकेश के व्यक्तित्व में साम्य दिखायी देता है। राकेश ने "आषाढ़ का एक दिन" नाटक लिखा तब वह हिन्दी, संस्कृत में एम.ए. करके साहित्य क्षेत्र में कदम रख रहे थे। नवयुवक का समाज के तरफ देखने का जो नजरिया होता है वही नजरिया कालिदास का है। अपने ही स्वप्निल जग में खोया कालिदास संघर्ष की कल्पना तक नहीं कर सकता। जीवन में आनंद और सुख की अभिलाषा होना सर्वसामान्य युवक की इच्छा है। लेकिन स्वयं स्वप्निल जग में खोकर सामने आये समस्या का समाधान नहीं होता। समय अपना कर्तव्य करने में भूलता नहीं है। अंत में एक समय ऐसा आ जाता है कि, व्यक्ति को हताश होना पड़ता है। समय के आगे घुटने टेकने पड़ते हैं। कालिदास सच्चा कवि है इसलिए भयंकर सत्य आसानी से झेल नहीं सकता। अतः कठोर वास्तव से दूर भाग जाता है। राकेश कहना चाहते हैं कि समस्या का समाधान चाहते हो तो उससे संघर्ष करो, डटकर मुकाबला करो। कम से कम समस्या को स्वीकारने का साहस रखो।

कालिदास के समय जो राकेश की भावनायें थी आगे आते-आते बदल रही है। राकेश के दूसरे नाटक "लहरों के राजहंस" का नायक नन्द है। कालिदास की तरह नन्द पलायनवादी नहीं है, संघर्ष करने का धैर्य नन्द में है। पुरूष की मानसिकता में बदलाव आ रहा है। नन्द के अपने संघर्ष बिंदू हैं अपनी समस्यायें हैं। नन्द की मानसिक अवस्था राकेश ने भोगी है घर, शांति की चाहत दोनों में है।

कालिदास के सभी निर्णय समाज एवं नैतिकता के मर्यादा में बँधे हैं। नन्द ऐसा नहीं है। नन्द स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहता है। "लहरों के राजहंस" नाटक के नायक और नायिका नन्द और सुन्दरी व्यक्ति-स्वातंत्र्य के प्रबल समर्थक हैं। सुन्दरी और नन्द अपना जीवन अपने मर्जी से गुजारना चाहते हैं। किसी और की मान्यताएँ ओढ़कर जीना पसन्द नहीं है। सुन्दरी कहती है, "हमारे अन्तरंग जीवन को लेकर उन्हें कुछ भी सोचने का अधिकार नहीं है।"[3] यही व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रबल भावना नन्द को तथागत द्वारा दिये गये भिक्षापात्र अस्वीकार कर वहाँ से आने की शक्ति देता है। नन्द स्वतंत्र आधुनिक व्यक्ति के भाँति अन्य व्यक्ति द्वारा थोपे गये विश्वास को ठुकरा देता है। परम्परागत मूल्यों के अनुसार समाज में मनुष्य गौण होता है।समाज वही स्वीकारता है जो कार्य समाज द्वारा मान्य हो। वर्तमान युग का व्यक्ति स्वतंत्र है। वह अपनी इच्छा अपने विचार के अनुसार कर सकता है। अन्य समाज के साथ नन्द दीक्षित हो जाता तो कोई आपत्ति नहीं लेकिन सब कुछ ठुकराकर लौटना विद्रोही प्रवृत्ति का प्रतीक है। नन्द व्याघ्र से युद्ध करता है यह मन में स्थित विद्रोही बीज की अभिव्यक्ति है। यह विद्रोह है थोपे गये तथागत के विचारों के प्रति। स्वयं कुछ न कर सकने की पीड़ा का उन्माद यह व्याघ्रयुध्द है। व्याघ्रयुध्द के प्रेरणा का कारण नन्द देता है कि"यह केवल मन का विद्रोह था - बिना विश्वास एक विश्वास को अपने ऊपर लादे जाने के लिये ? या इसलिए कि उस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका, नहीं यह विश्वास मेरा नहीं है - मैं तुम्हारा या किसीका विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, जीना चाहता।"[4]

नन्द अपने स्वातंत्र्य की रक्षा के लिये संघर्ष करता है। जिस प्रकार आज का मानव अपने अस्तित्व एवं विचारों की स्वतंत्रता के लिए समाज से संघर्ष करता है, उसी प्रकार राकेश का नन्द अपने अस्तित्व रक्षा के लिये संघर्ष करता है। नन्द और सुन्दरी की प्रत्येक कृति अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए को जाती है।

नन्द तो आहत व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। नन्द जीवन की सार्थकता ढूँढ रहा है। नन्द अपनी अपेक्षा स्पष्ट रूप से समझ नहीं रहा है। नन्द कामना का एक और धरातल प्रस्तुत करता है। नन्द सामान्य व्यक्ति की तरह अपने प्रियजनों की अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने सुख का त्याग करता है। अपनी इच्छायें दबाये रखने के कारण नन्द घुटन महसूस करता है। यथासम्भव व्यक्ति अपनी इच्छा वासना को दबाये रखता है पर छोटे से आघात से यह दमित इच्छायें विस्फोट में बदल जाती है। नन्द प्रथम अपने पत्नी सुंदरी से प्रभावित है, अब तथागत अपने संन्यस्त जीवन का प्रभाव नन्द पर अप्रत्यक्ष रूप से डाल रहे हैं। नन्द भौतिक सुख और अध्यात्म सुख के बीच झूल रहा है। एक तरफ यक्षिणी जैसी सुन्दर पत्नी सुन्दरी का मोह है और दूसरी तरफ मन की शांति है। नन्द एक बिंदु पर स्थिर नहीं रहता है। नन्द छटपटाहट महसूस कर रहा है। नन्द की प्रमुख समस्या यह है कि, कोई उसकी मानसिकता नहीं समझ रहा है। नन्द जो कृति करता है प्रत्येक व्यक्ति अपने हिसाब से उसका अर्थ लगाता है।

जब नन्द वैचारिक द्वन्द से बाहर निकलकर ठोस निर्णय लेना चाहता है कोई न कोई व्यक्ति अपना प्रभाव नन्द पर छोडता है। नन्द फिर एक बार डगमगा जाता है। सही और गलत का फैसला करने में मनस्ताप भोगता है। जो व्यक्ति मानसिक रूप से उलझे होते हैं उनकी प्रत्येक कृति में मानसिकता दृष्टिगोचर होती है। नन्द के विचार और कृति में कोई तालमेल नहीं रहा है।

नन्द के मन में ऐसी कोई भावना है जिसे नन्द स्पष्ट रूप से बयान नहीं कर सकता। चेतना पर कुण्डली मारे बैठी यह भावना नन्द को अपने पाश से मुक्त होने नहीं देती। नन्द स्वयं को टूटे नक्षत्र की तरह अनुभव करता है

जिसका कोई वृत्त नहीं है। नन्द जब सुंदरी के पास रहता है तब तथागत का विचार करता है और तथागत के पास जाकर लौटकर सुंदरी के पास आने के लिए व्याकुल रहता है।

राकेश ने सामान्य आदमी के मानसिक द्वन्द को इसी माध्यम से व्यक्त किया है। आज आदमी द्वंद्वात्मक अवस्था में फँस गया है। द्वंद के कारण अनेक हो सकते हैं पर उससे व्यक्त पीड़ा का एहसास तो सभी व्यक्तियों में एक-सा होता है। "नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है, उसका आकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।"

यह एक चुनौती है देवी यशोधरा के लिये। सुंदरी का कहना है यशोधरा राजपुत्र को अपने सौन्दर्य से बाँधने में असफल रही। अगर वह राजपुत्र को प्रेम देती तो शायद वे संन्यास न लेते। यह दो नारियों की भिन्न विचारधारा है। अंत में सुंदरी का विश्वास खण्डित हो जाता है, नन्द मोहपाश तोड़ने में सफल होता है। वह वापस लौटता है यह बात और है लेकिन सुंदरी के विश्वास का खण्डन महत्वपूर्ण बात है। सुन्दरी कामनापूर्ति में जीवन की सार्थकता मानती है। गौतम बुद्ध की कामना पर विजय पाने की बात पर उसे तनित विश्वास नहीं है। सुंदरी कहती है "कामना पर विजय पाना भी एक कामना है।" कुछ अंश तक यह बात सच है। कामना को जीतना एक कामना है। ठीक उसी रात्र में कामोत्सव का आयोजना करना जिसके अंतिम प्रहर में यशोधरा देवी संन्यास दीक्षा ग्रहण कर रही है, अजीब है।

सुंदरी और गौतम बुद्ध के द्वंद का माध्यम नन्द और कामोत्सव का आयोजन है। नन्द और सुंदरी का दाम्पत्य जीवन भी द्वंद से परिपूर्ण है। प्रत्यक्ष द्वंद दाम्पत्य में है। गौतम बुद्ध और सुंदरी का द्वंद आसक्ति और विरक्ति का है। दोनों पक्ष में न विवाह है न सिद्धान्त कथन, न विरोध और न समर्थन। बस एक तनावपूर्ण स्थिति है।

दरअसल नन्द के मानसिक द्वंद का कारण बुद्ध और सुंदरी दोनों नहीं हैं। नन्द के मन में द्वंद उभरता है। नन्द का संवेदनशील होना इसी बात की निशानी है कि नन्द हर समय आहत होता है। नन्द का व्यक्तित्व विघटित हो गया है। आज के युग में भी व्यक्ति विकास को ओर चल रहा है। एक साथ सभी इच्छायें और सुविधाएँ प्राप्त नहीं होती हैं। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति निराश हो जाता है। यह निराशा जीवन में ऐसी छाये रहती हैं कि मनुष्य हाथ आये सुख का भोग नहीं कर सकता है। एक तो आदमी को जीवित रहने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, संघर्ष में इतना थक जाता है कि संघर्ष से प्राप्त जीवन के सुख का उपभोग करने के लायक नहीं रहता। नन्द मृग के आखेट के लिए जाता है और मार्ग से वापस आते हुए देखता है कि मृग अपनी ही क्लांति से मर गया है। क्या जीवन के संघर्ष का मृत्यु ही अंतिम बिंदु है ?

नन्द में निर्णय लेने की ताकद नहीं है। अगर स्वयं निर्णय कर सकता तो सुंदरी के मोहपाश में बँधा रहता, नहीं तो संन्यास दीक्षा लेकर मुक्ति मार्ग पर चल पड़ता। इसी बात से सुन्दरी और नन्द में दरार पड़ती है। सुंदरी अपने आप में परिपूर्ण नारी है। सौन्दर्य के साथ-साथ कुशाग्र बुद्धिमत्ता है।

सुंदरी स्पष्ट रूप से भोगवादी जीवन का स्वीकार करती है। तथागत से उसे शिकायत है कि अगर वे अपना प्रवचन, सरोवर में डूबते तैरते अपनी प्रेम लीला में मस्त राजहंसों को सुनाये तो सिर्फ देखेंगे और अपने आप में मस्त हो जायेंगे। सुंदरी के व्यक्तित्व में दोगलापन नहीं है। जो है स्पष्ट, स्वच्छ और स्वाभाविक है। पति नन्द के प्रति विश्वास है कि नन्द मोहपाश से दूर नहीं जायेगा। आहत नन्द इस विश्वास को खण्डित कर देता है और सुंदरी का गर्व टूटे आईने की तरह चूर चूर हो जाता है। नन्द के द्वन्द्व के माध्यम से नाटक को मूल समस्या सामने आती है। नन्द प्रभावों में उलझता रहता है। नन्द के इस बात का एहसास सुंदरी और बुद्ध दोनों को है। इसीलिए दोनों व्यक्ति अपने पूरी शक्ति के साथ नन्द को प्रभावित करते हैं।

जैसे नन्द बुद्ध के प्रभाव में जाता है सुंदरी संघर्ष में आ जाती है और एक नई मानसिकता में दोनों खण्डित होने लगते हैं। सुंदरी पहले से अहंभाव से ग्रस्त हैं। कामोत्सव की असफलता में उसे ठेस पहुँचती है उसकी क्षति-पूर्ति वह नन्द पर अधिकार जमाकर करती है। नन्द को सौन्दर्य का दास बनाती है। दर्पण लेकर खड़े रहने की कृति में यही क्षति-पूर्ति भावना है। दर्पण भिक्षुओं के मंद स्वर से काँपता है और फिर एक बार नन्द अपने द्वंद में फँस जाता है। यह दर्पण प्रतीक है मन का। दर्पण दोनों के सम्बन्ध और विश्वास का प्रतीक था जो टूट गया। सुंदरी जानती है दर्पण का टूटना अकारण नहीं था। क्षत-विक्षत सुंदरी टूटे दर्पण में अपना खंडित सौन्दर्य देखती है।

नन्द का मन कच्चा था और उस मन को हर कोई अपने हिसाब से आकार देना चाहता था। इसी बीच नन्द द्वंद के साथ अविश्वास का बोझ लेकर जी रहा है। गौतम बुद्ध का द्वार पर आकर लौट जाना अपना प्रभाव छोड़ने का प्रयत्न है। नन्द फिर बुद्ध के पास जाता है और बुद्ध के प्रभाव में आकर अपने केश कटवाकर आता है। सुंदरी के लिए यह नन्द नन्द नहीं "दूसरा व्यक्ति" है। केश कटवाना और व्याघ्र से निहत्थ युद्ध करना दोनों व्यक्तियों में चला संघर्ष ही है। पहला व्यक्ति अब "दूसरे व्यक्ति" से टकराने लगता है। दूसरा व्यक्ति दुर्बल है और सुंदरी को नन्द के दुर्बल व्यक्तित्व से घृणा है। नन्द दोनों व्यक्तित्वों में स्वयं को सही मानता है। दोनों उसकी मानसिक आवश्यकता को प्रकट करते हैं। पुरूष नारी को अपनी अनेक आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता मानता है लेकिन नारी के लिए वह सम्पूर्ण उपलब्धि है। पुरूष सदैव भोक्ता रहा है और नारी को भोग्या-वृत्ति जीवन की सार्थकता है।

नारी जितना अधिक प्रेम पाती है उतनी ही वह दुर्बल हो जाती है। पुरूष का नारी के प्रति आकर्षण जितना प्रखर होता है उसी तरह विकर्षण भी तीव्र होता है। प्रेम के विघटन, मानसिक तनाव में दोनों टूटते जाते हैं। राकेश का लक्ष्य रहा है कि ऐसे आकर्षण-विकर्षण के बीच तनावपूर्ण स्थिति में जो रहे स्त्री-पुरूष को एक दूसरे के सामने खड़ा कर देना।

सुंदरी का नन्द के प्रति प्रेम सिर्फ था शारीरिक आकर्षण और सौन्दर्य नहीं है। "इतना ही समझ पाते हैं ये लोग" कहने वाली सुंदरी एक-दूसरे को न समझ पाने की विडम्बना की ओर संकेत करती है, तो नन्द सोचता है कि केश कटवा देने के कारण सुंदरी विक्षुब्ध हो गयी है। दोनों दो विरूद्ध दिशा से विचार करते हैं। मंडित रूप देखना सुंदरी के लिये सह्य नहीं होता और विचार करने वाला नन्द एक महत्वपूर्ण बात भूल जाता है कि सुंदरी का क्षोभ पुरुष द्वारा न समझने की बात से है। यह नाटक राकेश द्वारा पुनः पुनः लिखा गया है। हर समय बिंब अलग थे लेकिन विवशता एक ही थी। एक-दूसरे के सामने खड़े होकर एक-दूसरे से मन की बात कहने में विवश होना।

इस नाटक के प्रतीक पात्रों के अहसास को गहराई से व्यक्त करते हैं। मानव के मन में मृत्यु का एहसास होता है। मृत्यु जीवन का शाश्वत सत्य है। लेकिन दूसरे व्यक्ति की मृत्यु के साथ अपनी मृत्यु का एहसास होते देखना अति संवेदनशील व्यक्तित्व की निशानी है। उदा॰एक शवयात्रा देखकर एक राजपुत्र संसार का त्याग कर संन्यासी गौतम बुद्ध बन जाता है। अपनी ही क्लांति से मृत मृग के दर्शन की मनःस्थिति नन्द के पूरे कार्य-विचार पर छायी रहती है। इस मनःस्थिति में वह जंगल जाकर व्याघ्र से युद्ध करता है। दरअसल नन्द मृग की क्लांति में अपने मन की क्लांति देखता है। नन्द विचारों के तनावों से क्लांत अनुभव कर रहा है। नन्द खण्डित व्यक्तित्व है, अंदर टकराने वाली प्रवृत्तियों से उत्पन्न यह क्लांति है।

मृग की क्लांति के द्वारा राकेश ने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए आधुनिक मानव की थकान को व्यक्त किया है। अस्तित्व के लिये संघर्ष और इससे उत्पन्न पीड़ा यह नियति है। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक का नायक कालिदास राजसत्ता का शिकार बन गया था। "लहरों के राजहंस" नाटक में नन्द और सुंदरी दोनों पार्थिव-अपार्थिव संघर्ष में जूझते हैं। नन्द स्वयं सुंदरी के मोह और बुद्ध की निवृत्ति का शिकार बनता है।

"अस्तित्व और अनास्तित्व के बीच चेतना को प्रश्नचिह्न" बने यह पात्र नन्द और सुंदरी एक-दूसरे के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। नन्द द्वंदात्मक अवस्था को अंत तक झेलता रहता है। सुंदरी केवल देह के स्तर पर विचार करती है। अपने अस्तित्व का प्रश्न सबसे बडी समस्या है सुंदरी के लिए। सुंदरी का अहम् भाव इतना प्रबल है कि वह न नन्द से जुड़ती है न यशोधरा और बुद्ध से। वह जुड़ती है सिर्फ अहं और सुखवादी दृष्टि से। इसी कारण सुंदरी का अंतर्मन क्षत-विक्षत है, उसके व्यक्तित्व की मूलभूत संवेदना ही समाप्त हो जाती है। नन्द को व्यक्ति नहीं वस्तु बना डालती है। सबको अपनी कामना का लक्ष्य समझती है। अंत में असफल होकर स्वयं अपनी प्रतिमा पर खिजती है। मन के द्वंद का विस्फोट कृति द्वारा व्यक्त होता रहता है।

नन्द दो यथार्थों से जूझता है, सुंदरी मानसिक द्वंद्व को कुछ हद तक उसे पी जाती है। सुंदरी का सूप्त द्वंद यथार्थ और अयथार्थ के बीच है। समानता दोनों में यही है कि दोनों एक सुखपूर्ण क्षण के लिये जीते हैं। नन्द के सामने स्वतंत्र अस्तित्व का प्रश्न है, नन्द अपना अस्तित्व सुंदरी के अस्तित्व में विलीन कर देना चाहता है। सुंदरी नन्द पर हावी होने के सभी उसके प्रति समर्पित है लेकिन उसकी दृष्टि में प्रेम नहीं एक अपूर्ति है। यह प्रेम-संबंध आसक्ति और अनासक्ति का ऐसा द्वंद उपस्थित करता है कि तीजी अस्तित्व का नया संकट पैदा हो जाता है। प्रेम भाव में तृप्ति के साथ एक और विध्वंसक तत्व होता है जो प्रतिस्पर्धी सहयोगी दास्यत्व चाहता है। यह तत्व मन को छिन्न-विछिन्न कर देता है। नन्द सुंदरी के प्रेम में यही तत्व विद्यमान है। नन्द कहता है - "तुम समझती हो तुम्ही वह केंद्र हो जिसके वृत्त में मैं एक नक्षत्र की तरह घूमता हूँ, जिसका कहीं वृत्त नहीं, जिसकी कोई धूरी नहीं।"[5]

नन्द निःसंशय अस्तित्व की विडम्बना भोगता है। पार्थिव-अपार्थिव द्वंद में फँसा नन्द दुर्बल हो गया है और पलायन का सहरा लेता है। नन्द का द्वंद हमारे आधुनिक युग की देन है क्योंकि आस्था खत्म हो जाये तो व्यक्ति के पास द्वंद के अलावा कुछ बचता है ही नहीं। आज मानव ऐसा त्रिशंकू अवस्था में है

कि वह सिर्फ चौराहे पे खड़ा रहकर इधर-उधर देख सकता है। कोई मार्ग उसके सामने नहीं हैं।

नन्द एक प्रामाणिक जीवन की अपेक्षा करता है। अपनी अस्मिता के साथ एक प्रामाणिक जीवन चाहता है। स्वयं के अनुभव से निर्णय लेना चाहता है। सुंदरी और बुद्ध की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करना चाहता न उनके निर्णय पर अंमल करना चाहता है। श्यामांग नन्द के खण्डित व्यक्तित्व का प्रतिनिधि है। नन्द को श्यामांग की बात में अपने अंतर्मन की छाया झलकती दिखायी देती है। नन्द के अंदर का दूसरा व्यक्ति श्यामांग है। नन्द की काल्पनिक भावना में जीता श्यामांग उन्मादी प्रवृत्ति के दर्शन कराता है, यह होना अनिवार्य है। मन में दबी घुटन एवं द्वंद्व की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में व्यक्त होगी। नन्द की यह विस्फोटित अभिव्यक्ति श्यामांग के माध्यम से व्यक्त होती है।

बुद्ध सिर्फ वैचारिक छाया का रूप है। नाटक में प्रत्यक्ष रूप से सामने आता पात्र नहीं है। संपूर्ण नाटक का मूल द्वंद्व बुद्ध और सुंदरी अर्थात आसक्ति और विरक्ति का है। इस द्वंद्व में फँसा नन्द इससे भागना चाहता है, दो समय वह प्रयत्न करता है लेकिन वापस अपने परिधि में लौटता है।

राकेश के नाटक के नायक लौटने के लिये अभिशप्त क्यों हैं ? स्वयं राकेश के मन में घर के लिए स्वतंत्र कोमल भावनायें थी यह एक कारण और दूसरा कारण यह है कि, यह टूटे, हारे, थके नायक जाये तो जाये कहाँ ? इतने विवश हैं कि अनचाहे परिवेश में लौट जाते हैं। इस नाटक में इसे व्यंजित किया गया है कि व्यक्ति जीवित रहने के लिए संघर्ष करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। मृग का भागते हुए क्लांति से मरना, उसका जीवित रहने के लिए ही क्लांति से मरना है। यही बात व्यक्ति पर लागू है। वह जीवित रहने के लिए परिश्रम करते हुए अपनी मृत्यु को पाता है। समाज उसे जीवित रहने नहीं देता। यह बात राकेश के अनुभव की ओर संकेतित करती हुई दिखायी देती है। व्यक्ति के विघटन की अभिव्यक्ति करती है।

आधे अधूरे

"आधे अधूरे" में आधुनिक महानगरीय मध्यमवर्गीय परिवार का यथार्थवादी चित्रण है। यह पारिवारिक विघटन का दस्तावेज है। आधुनिकता की पहचान क्या है ? जीवनचर्या में समय की कमी, जीवन के प्रति उदासीनता, खोखले लेकिन आवश्यक बने अनचाहे रिश्ते, स्त्री-स्वातंत्र्य और इन बातों का एक काला पहलू जिस पर समाज आपत्ति उठाता है। यही सब आधुनिकता की पहचान और परिणाम है।

राकेश के नाटक का परिवार ऐसा परिवार है जिसमें समाज के सभी स्तर के व्यक्ति हैं, अपनी अलग पहचान के साथ है, ये पात्र हमारे आसपास दीखते हैं, कुछ बातें हम अपने मन में भी महसूस करते हैं। प्रेम और आत्मीयता परिवार के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटक है। परिवार से प्रेम अलग किया जाये तो घर घर नहीं बल्कि एक वेटिंग रूम बन जायेगा। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने काम के लिए आये, रूके और अपना काम पूर्ण होने के पश्चात चला जाये। किसी की भावना से किसी को सरोकार नहीं रहेगा। समाज के हित के लिये यह बात निश्चित रूप से हानिकारक है।

राकेश ने यथार्थ की समस्या से संघर्ष करते पात्रों का चित्रण किया है। यह काल्पनिक निर्मिति सत्य का आभास देती है। इस नाटक के पात्र अपने अपने प्रश्न लेकर समाज के विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक पात्र अलग दृष्टिकोन से समाज को देखता है। मनोवैज्ञानिक जुंग और एडलर का प्रसिध्द सिद्धान्त है अन्तर्मुखी मनुष्य संसार को अपनी दृष्टि से देखता है। "आधे अधूरे" नाटक के पात्र ऐसे ही अन्तर्मुखी हैं, इन सबका मानसिक विश्लेषण करें तो यह जाहिर होता है यह सब मानसिक तनाव से ग्रस्त हैं। मन में घुटन लेकर जीवन व्यतीत कर रहें हैं। यह घुटन उनके कृति द्वारा अभिव्यक्त होती हैं।

"आधे अधूरे" नाटक की नायिका सावित्री है। सावित्री आधुनिक नारी की प्रतिनिधि है। पति निकम्मा होने पर स्वयं अर्थार्जन के लिये घर को छोड़ती

है। सावित्री फ्रायड़ की "पुरूष-भाव प्रतिमा" का रूप है। फ्रायड़ के मतानुसार - "ऐसी नारी में पुरूष के गुणों का प्रतीक है। जिन स्त्रियों में इस प्रतिमा की प्रधानता होती है, वह पुरूषों से समानता और स्पर्धा करती है। वह शासन प्रिय और आत्म स्थापना-वृत्ति वाली होती है।"[5]

सावित्री अर्थार्जन करती है और स्वयं गृहस्थी सम्हालती है। सावित्री भले-बुरे मार्ग से अपने घर की हालत सुधारना चहती है। जो कुछ वह कर रही है वह निजी स्वार्थ के लिए नहीं है, बच्चों के भलाई के लिये कर रही है। पुरूष मित्रों के साथ खुलकर व्यवहार करना सावित्री के लिए कोई लज्जास्पद बात नहीं है। हमारे समाज में नारी के लिये विशिष्ट मर्यादा हैं जिसे उल्लंघना समाज और परिवार के लिये आपत्तिजनक है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण आज नारी स्वतंत्रता से विचार कर रही है, लेकिन एक जमाना ऐसा भी गुजर गया है जब स्त्री उपभोग्य वस्तु मानी जाती थी। आज यह बात नहीं रही लेकिन नारी आज तक दूसरे स्थान पर मानी जाती है। सावित्री कर्म से पुरूषी है और ऐसी नारियाँ पुरूष का प्रथम स्थान लेने के लिए स्पर्धा करती हैं। शारीरिक दृष्टि से वह पुरूष नहीं लेकिन अन्य अनेक कार्यों द्वारा पुरूष पर अंकुश रखना चाहती है। सावित्री ठीक यही करती है।

महेन्द्रनाथ सावित्री का पति है जो बिजनेस में सबकुछ हार चुका है। इस बात का सावित्री फायदा उठाती है। महेन्द्रनाथ निकम्मा है और अब गृहस्थी का भार सावित्री के कंधों पर है इसलिए महेन्द्र एक ही बात करता है, सावित्री को रोकता-टोकता है। सावित्री महेन्द्र को पूरा आदमी नहीं समझती इस बात का एहसास प्रत्येक क्षण करा देने में चूकती नहीं है। सावित्री नाटक के अन्त में जुनेजा से आवेश में आकर दिल की भड़ास निकालती है तब सावित्री का अन्तर्मन स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। यहाँ पता चलता है सावित्री अपने पति से सिर्फ पैसा नहीं चाहती थी उसे सुरक्षितता के साथ प्रेम और आस्था की चाहत थी। सावित्री का दूसरा पहलू यह भी है कि वह महेन्द्र को प्रेम से मार्ग पर ला सकती

थी। लेकिन अंत तक ऐसा हुआ नहीं है। सावित्री महेन्द्र की तबाही में बराबर की हिस्सेदार है। पुरूष का काम सदियों से यही है कि धनार्जन करना और नारी गृहस्थी सम्हालती है। परिवार की आवश्यकताएँ महेन्द्र से ज्यादा सावित्री जानती थी। समय के प्रवाह के साथ सावित्री पैसों के भुलावें में आ गयी। महेन्द्रनाथ के उजूल-फजूल खर्चे अनदेखे करती रही क्योंकि इसीके साथ सावित्री समाज में 'हायलेवल' का जीवन उपभोग रही थी। कीमती फर्निचर और होटल में खाना-पीना सावित्री की माँग थी।

अब ऐसा दौर आया है कि खुद जो करो वही भरो। अब सावित्री स्वयं धनार्जन कर रही है। पैसों का मोल जानती है, बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को जान गयी है। अपनी ही धुंद में मस्त सावित्री परिवार के प्रति जब सचेत हो गयी है, जब बडी बेटी भाग जाती है। बच्चे मार्ग से इतने दूर भटक गये हैं कि उनके लिये की गयी हर कोशिश नाकाम हो रही है। अब बच्चों में विचार शक्ति आ गयी है। अपने हिसाब से सोचने के काबिल हो गये हैं।

सावित्री भले ही वह अर्थार्जन के लिए घर छोड़ती हो पर एक वक्त होता है कि बच्चे कच्चे मिट्टी की तरह होते हैं तब बच्चों पर संस्कार होना जरूरी होता है। बच्चे अब हाथ से फिसल गये हैं इसका दर्द सावित्री को अब हो रहा है। सावित्री और महेन्द्रनाथ के आपसी रिश्ते उलझे हैं। सावित्री महेन्द्रनाथ को चिपचिपा और लिजलिजा आदमी समझती है। निकम्मा होने के कारण नाशुक्रा और घरघुसरा भी कहती है। परिवार की आर्थिक स्थिति बिगाड़ने का जिम्मेदार महेन्द्र को मानती है। महेन्द्र के मित्रों से सावित्री को चीड़ है क्योंकि वही वे आदमी हैं जो महेन्द्रनाथ को विचारों पर अपना सिक्का जमाते हैं।

आर्थिक परावलंबित्व से टूटा महेन्द्रनाथ ज्यादा समय घर के बार मित्र के साथ गुजरता है। सावित्री महेन्द्र को अधूरा पुरुष समझती है। महेन्द्र के अधूरेपन से तंग आकर सावित्री का ध्यान घर से बाहर चला गया। बाहर समाज में स्थित पैसे वाले ऐसे आदमी मिले जो उसके लिए करते कुछ नहीं लेकिन अपने वहशी

नजरों से सावित्री को नोंचते रहे।

सावित्री आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है इसलिए उसका भ्रम है कि सावित्री जो कर रही है उसे समाज और समाज का छोटा प्रतिरूप उसका परिवार उसी सभी योग्य-अयोग्य बातें आसानी से अपनायेगा। लेकिन ऐसी बात नहीं है पड़ोसी छोटी बच्ची को ताने देते हैं। बच्ची के मन पर क्या असर होगा यह बात बिना सोचे सावित्री उसे धुत्कार देती है। सावित्री अपने पुरूष मित्रों के साथ घूमती फिरती है। बॉस और अन्य मित्र खुलेआम घर में आते-जाते हैं। सबसे विचित्र बात यह चित्र ऐसा ही एक मित्र सावित्री की बेटी को लेकर भाग गया। महेन्द्रनाथ को अन्य पुरूषों का घर में आना-जाना गँवारा नहीं है, सावित्री का कहना है वह जो कर रही है वह घर की खराब हालत सुधारने के लिए और बेटे की नौकरी के लिये करती है। सावित्री का मन चकाचौंध की तरफ खींचता जाता है। शिवजीत, जुनेजा आदि ऐसे ही मित्र हैं, जिनकी तरफ सावित्री खींचती गयी थी पर उनमें पूर्ण पुरूषत्व न मिलने पर टूटकर वापस आयी थी। एक पूरा आदमी सावित्री चाहती थी लेकिन प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण नहीं होता, सभी में कोई न कोई कमी अवश्य होती है।

महेन्द्रनाथ से सावित्री नफरत करती है इसका एक और कारण यह भी है कि महेन्द्र सावित्री के साथ पशुवत व्यवहार करता है। दरिन्दा बनता है, हीन-दीन बनता है। पति-पत्नी के संबंध टूटे हैं, जिसका परिणाम बच्चों पर होता है। घर में शांति नहीं है, घर से सब भागना चाहते हैं। घर के सभी व्यक्ति एक साथ रहकर भी दूरी का अनुभव करते हैं। साथ-साथ रहकर भी दूरी अनुभव करना और एक-दूसरे को सहने के लिए विवश होना एक तनावपूर्ण परिस्थिति को जन्म देती है। इसी परिस्थिति के बीच सावित्री गुजर रही है। सावित्री न एक सफल माँ बन रही है न एक सफल पत्नी। जबान में जरूरत से ज्यादा तीखापन और क्रोध सावित्री में आर्थिक सुरक्षितता के कारण आ गया है। आफिस में काम करने वाली हजारों नारियाँ गृहस्थी सफलता से सम्हालती हैं लेकिन सावित्री को घर से लगाव नहीं है, घर की जिम्मेदारी इसी वजह से टालती रहती है।

घर में काम करना, घर के लिये त्याग करना सावित्री के "नेचर" में नहीं है। हर समय डाँट और फटकार सुनाती है।

भारत में सावित्री जैसी नारियाँ कम होगी लेकिन लेखक ने भविष्य की तरफ अंगुली-निर्देशन किया है, कि परिवार की ऐसी स्थिति बनी रही तो यह कल्पना का परिवार यथार्थ में बदल जायेगा। राकेश पाठकों को सोचने पर मजबूर करता है कि आधुनिकता का यह भी दुष्परिणाम है कि "घर" नहीं रहता है। आदमी दिन-रात दौड धूप किस कारण करता है ? उसे घर बनाना होता है, परिवार बनाना होता है जहाँ वह चैन की साँस ले सके। अगर यह परिवार टूट गया तो शेष कुछ भी रहेगा नहीं। समाज की महत्वपूर्ण कडी है परिवार व्यवस्था। जो हम परिवार को देते हैं वही बच्चे बड़े होकर समाज में देते हैं।

यह सावधानी का इशारा है जिसे राकेश ने पाठकों को दिया है। राकेश ने यहाँ एक बात कहनी चाही है कि सावित्री यथार्थ का मुकाबला करती है। महेन्द्रनाथ ने जिम्मेदारी से मुँह मोड दिया लेकिन सावित्री हिम्मत नहीं हारती। समाज में पूरे ताकद के साथ उतरती है यह बात अलग है कि उसका तरीका क्या है। सावित्री की हिम्मत महत्वपूर्ण है। सावित्री की मान्यता है कि विवाहित जीवन में दो व्यक्तियों का शारीरिक सम्बन्ध सबकुछ नहीं होता। इसके आगे भी एक भावना होती है। सावित्री यही "एक भावना" अपने मित्रों में ढूँढती है। "सिडमण्ड फ्रायड़ ने व्यक्ति के चार रूप बताये हैं, वह - 1· शासक, 2· पलायनवादी, 3· परावलम्बी, 4· उद्योगी।

सावित्री शासक और उद्योगी व्यक्तित्व का मिला-जुला रूप है। शासक प्रारम्भ में यथार्थ पर अधिपत्य जमा कर चलते हैं। उद्योगी व्यक्ति समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष करता है। इन मान्यताओं के अनुसार सावित्री का अपने बच्चों के हित के लिए 'बॉस' लोगों को घर बुलाना यथार्थवादी दृष्टिकोन है। क्योंकि सावित्री सफलता की चाबी कौन है जानती है और उसी रास्ते का इस्तमाल कर रही है। संघर्ष का तत्व सावित्री में नहीं होता तो सावित्री घर में कुढ़ती बैठती। परिवार

के भले के लिये स्वयं नोकरी नहीं करती यह उद्योगी व्यक्ति का लक्षण है।

सावित्री की मानसिकता ऐसे बिंदू पर आकर रूकी है कि वह हताश मन से प्रवाह के साथ चल रही है। मन में दबाव, पीड़ा लेकर चल रही है। यही भावना, पूर्ण पुरूष की अप्राप्ति, सावित्री को पुरूष मित्रों में खोजने के लिए बाध्य करती है। महेन्द्र के प्रति अन्तर्मन में जो भावना है वही सावित्री अन्य व्यक्तियों से पूर्ण करना चाहती है। महेन्द्रनाथ समाज के पुरूषों का प्रतिनिधि है। महेन्द्रनाथ को अपनी जिम्मेदारी से ज्यादा अपने पुरूषत्व का अहं है, एहसास है। महेन्द्र नाटक में "पुरूष एक" इसी नाम से आता है। एक पुरूष का प्रतिनिधि जो सब खो चुका है। महेन्द्र के जीवन का कोई निश्चित बिंदू नहीं है, सावित्री जो कर रही है परिवार के लिये कर रही है। महेन्द्र सिर्फ कीड़े-मकोडे की तरह जीवन काट रहा है। अनिश्चित व्यक्तित्व है।

महेन्द्र एक समय में हसमुख और मित्रों में चहेता व्यक्ति था। पार्टनर जुनेजा के साथ 'बिजनेस' करता था। सावित्री और बच्चों के लिये ऊँचे होटल में खाना-पीना, फर्निचर आदि के लिये पानी जेसा पैसा खर्च करता था। लड़का, लडकियाँ कानव्हेंट में पढ़ती थी, अच्छा मकान था, आरामदेय सभी चीजे घर में मौजूद थी। एक सपने जैसा संसार यकायक नर्क कैसे बन गया ? अकेला महेन्द्र इस बात के लिए जिम्मेदार नहीं है। महेन्द्र की इच्छा है कि घर सुख चैन से भरा पूरा हो। पत्नी समझदार हो कि खराब आर्थिक हालात में समझदारी से काम ले। लेकिन यह बात सिर्फ सोचने की है। असल में सभी उल्टा होता गया। आर्थिक हालात खराब होते ही घर का चैन चला गया, परिवार के सदस्यों की भावना बदल गयी। उपेक्षा के सिवा कुछ नहीं रहा। महेन्द्रनाथ की भूमिका अनिश्चित, टूटी और निराशाजनक है। एक ऐसा बिंदू है जिसका कोई भी अर्थ नहीं है। घर के खराब फर्निचर की तरह एक वस्तुमात्र बन कर रहा है।

निराशजनक परिस्थिति में जो साथ दे वही व्यक्ति अपना लगता है। पार्टनर जुनेजा ऐसा मित्र है जो महेन्द्र को मानसिक आधार देता है। आज बेकारी की अवस्था में घर से उपेक्षा मिल रही है। महेन्द्रनाथ की कमजोरी है पत्नी सावित्री।

पत्नी से प्राप्त उपेक्षा को सहकर महेन्द्र पत्नी से प्रेम करता है। पत्नी के अन्य पुरूष मित्रों का खुलेआम घर आना-जाना स्वीकार करता है। अगर आपत्ति भी होती तो क्या उस पर कोई विचार करता ? नहीं। घर का भार सावित्री अपने हिम्मत से ढो रही है इसी कारण महेन्द्र आत्माभिमान भी भूल गया है। जो घर में चल रहा है, उसके विरोध में सिर्फ शब्द से विरोध करता है, कृति से चीड़ व्यक्त करता है। पत्नी से प्रेम करता है, हर लड़ाई झगडे के पश्चात जुनेजा, के घर जाता है लेकिन फिर वापस आता है। दिल का रोग भी अन्दर से जिस्मानी तौर पर खोखला कर रहा है। वास्तव में परिस्थिति के कारण महेन्द्र अपनी छटपटाहट संघर्ष के लिये अपनी क्षमता को, विश्वासों के खोखलेपन को पलायन का सहारा लेकर दबाना चाहता है।

सावित्री उसे स्पष्ट रूप से हीन, तुच्छ और निकम्मा कहती है। अतः बार-बार की मानसिक चोंट ने उसे ऐसा चिड़चिड़ा बनाया है। राकेश के नाटकों के नायकों की विशिष्टता यही है कि वे सत्य परिस्थिति को स्वीकारते नहीं। भीतर ही भीतर घुटते रहते हैं। राकेश के नाटकों के नायक आत्मकेन्द्रित और नितान्त अकेलेपन का शिकार होते हैं। महेन्द्र, नन्द और कालिदास में यह साम्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

महेन्द्र और सावित्री का दाम्पत्य जीवन अत्यंत तनावपूर्ण है। सावित्री का महेन्द्र को लिजलिजा और चिपचिपा आदमी समझना, एक आधा भी आदमी न समझना दोनों की भावनायें स्पष्ट दिखायी देती हैं।

पति-पत्नी और बच्चे एक ही छत के नीचे एक साथ रहते हुए एक-दूसरे को अजनबी महसूस करते हैं। कितनी विसंगति है जीवन में। महेन्द्र न पूरा मित्रों का रहा है न पत्नी का विश्वासपात्र बना है। रीढ़ की हड्डी जैसे टूट गयी है। महेन्द्र को अपूर्ण आदमी कहने वाली सावित्री खुलेआम अन्य नालायक पुरूषों के साथ उठती-बैठती है, घर के बाहर पूरे आदमी की तलाश करती है। मनोज, शिवजीत, सिंघानिया सभी में अपूर्णता पाती है। महेन्द्र के साथ रहती है लेकिन

तन-मन से एकरूप नहीं है, वह हर बार महेन्द्र और घर को छोड़ना चाहती है।

एक पुरूष यह जीवन की विडम्बना सिर्फ देखता रहा है क्योंकि महेन्द्र के हाथ में कुछ भी नहीं है। महेन्द्र सिर्फ अपना रोष प्रकट करता है घर से कुछ दिन गायब रहता है वापस फिर लौट आता है। पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे से भागना चाहते हैं। अपनी लाश को ढ़ोते रहते हैं क्योंकि कोई अन्य चारा तो नहीं है।

यही दाम्पत्य जीवन की त्रासदी और विड़म्बना है, स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की अनिवार्य परिणति है। अपनी घुटन और कुण्ठा को वे चुभीले शब्द से बाहर निकालते हैं। लावे की तरह बहुत कुछ है जो घुमड़ रहा है, बाहर निकलने के लिये बेचैन हैं पर निकलता नहीं है। एक तनाव है, मानसिक आन्दोलन है जो महेन्द्र को अन्दर ही अन्दर खाये जा रहा है। महेन्द्र स्वयं को घिसा रबड़ का टुकडा कहना इस बात की पुष्टि करता है कि परिवार में उसका अपना क्या स्थान है।

महेन्द्रनाथ घर का प्रमुख पुरूष था। अब वह बिल्कुल बेकार और निकम्मा आदमी है। महेन्द्रनाथ अपने पार्टनर जुनेजा के साथ बिझनेस में कई बार पैसा लगाकर घाटे में आ चुका है। एक बात स्पष्ट है कि हमेशा महेन्द्रनाथ घाटे में रहा है। महेन्द्रनाथ अपनी आँखों से घर में परपुरूषों का आना-जाना, सावित्री का समय-असमय बाहर चले जाना देख रहा है लेकिन कुछ बोलने की हिम्मत नहीं है। अपनी मनःस्थिति को अपनी कृति द्वारा व्यक्त करता है। उदा॰ अखबार को रस्सी बनाता है, फाईलों की धूल ऐसे झटकता है जैसे मन का द्वेष व्यक्त कर रहा हो। उसे अपने परिवार में क्या स्थान है यह अच्छी तरह ज्ञात है, उदा॰ "किसे सुना सकता हूँ ? कोई है जो सुन सकता है ? जिन्हें सुनना चाहिए, वे सब तो एक रबड़-स्टैंप के सिवा से कुछ समझते नहीं मुझे।"[7]

महेन्द्र पलायनवादी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। महेन्द्र संघर्ष से जीवन सुधारना नहीं चाहता है। अर्थार्जन नहीं तो एक काम महेन्द्र कर सकता है कि गृहस्थी ठीक से सम्हाले लेकिन पुरूष जाति का "इगो" यहाँ उसे रोकता है। समस्या के साथ

समस्या का हल भी होता है। संघर्ष से समस्या का हल ढूँढना चाहिए। महेन्द्र ऐसा नहीं कर रहा है वह और समस्याओं को निर्माण कर रहा है।

पत्नी से अपमान और समाज से घृणित महेन्द्र अपनी इच्छा व्यक्त करने में असमर्थ है। इसलिए वह सावित्री से पशुवत व्यवहार करता है और अपनी अहमियत जताता है। जिसकी कीमत सावित्री के लिए शून्य है। सावित्री और महेन्द्र अनचाहा रिश्ता निभा रहे हैं। एक-दूसरे के प्रति घुटन अन्य मार्गों से व्यक्त करते हैं। मन में दबे स्फुल्लिंग कृति द्वारा बाहर आते हैं। सावित्री का घर से बाहर वक्त बेवक्त निकलना हो या महेन्द्र का घर छोड़कर जाना और वापस आना, एक ही मनोवृत्ति है। एक असहायता की अभिव्यक्ति। महेन्द्र की निराशावादी मनोवृत्ति उसे अन्य लोगों को तकलीफ देने के लिए उकसाती रहती है। घर की हालात से तंग आकर घर से भाग जानेवाला तथाकथित नाटक का प्रमुख पात्र, पुरूष घर लौटने पर मजबूर है।

"मनुष्य की जिन्दगी आज एक ऐसी फाइल हो रही है जो कहीं उसके ही भीतर बन्द है। यदि उसे खोला भी जाय तो उसके सारे कागज बिखर जाते हैं या यह बिखराव ही उसे अपने से ही अजनबी अपने से ही कटा हुआ और अपनी ही स्थिति से बेखबर कर देता है। नतीजा यह कि उसका "पूरापन" अधूरेपन में बदल जाता है। यह अधूरा जिया जाना और जीकर भी अपने अधूरेपन के प्रति सजग बने रहना उसकी नियति है।"[8]

अन्य सदस्य

परिवार में अन्य तीन सदस्य है बिन्नी, अशोक और किन्नी। तीनों बच्चे माता-पिता के तनावपूर्ण जीवन के शिकार है। अपने हिसाब से सोचते और कृति करते हैं। बड़ों से बात करने की तमीज तक वे भूल गये हैं। कानव्हेंट में पढ़े यह बच्चे इतने बेफिक्र क्यों हैं ?

अशोक आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है। बेकारी से परेशान युवक है। खाली समय का सही उपयोग तस्वीरे काटने में, प्रेम का चक्कर चलाने में करता है। पुरूष है इसलिये पिता से थोडी बहुत हमदर्दी है। माता के प्रति शुद्ध विद्रोह है। बेकारी का यह शिकार सावित्री के बॉस को उसकी सही पहचान कराने में हिचकिचाता नहीं है। एक बार छोटी बहन किन्नी के दुर्व्यवहार पर उसे टोकता है। जिस घर में पति-पत्नी में अजनबीयत है वहाँ बच्चे भी घर को घर नहीं समझेंगे, ठीक ऐसा ही हुआ है। अशोक गैरजिम्मेदार युवक है। सावित्री के व्यवहार को स्पष्ट रूप से विरोध करता है। तेज, चुभीले शब्दों द्वारा नोंचता है। सिंघानिया जेसे समाज के वहशी लेकिन उच्च पदस्थ व्यक्ति को ज़्यादा महत्व नहीं देता है।

आज की युवा पीढ़ी आधुनिकता, पाश्चात्य प्रभाव में अपना अस्तित्व खो रही है। यह पीढ़ी विचार कर सकती है लेकिन हाथ में कुछ नहीं है। आज की शिक्षा भी युवकों का पेट भरने में काम नहीं आती है। बेकारी ऐसी फैली जा रही है कि यह युवक उच्चवर्गीय समाज से नफरत कर रहे हैं। युवकों की जबान में तीखापन आ गया है। अशोक पिता की मानसिकता समझ सकता है। पिता के लिये चिंतित दिखायी देता है। इस युवा पीढी के विचारों का स्त्रोत समाज के हित कार्य की तरफ मूड़ना चाहिए। नहीं तो यह युवक नशे का सहारा लेकर भविष्य अंधकारमय बना देंगे।

अशोक के घर का माहोल कुछ ऐसा ही है कि यहाँ आनेवाला व्यक्ति परेशान हो जाये, अशोक तो इस परिवार का घटक है। बेकारी से तंग आ गया है बेकारी से आर्थिक आय कुछ नहीं और खाली बेकार समय गुजारने की परेशानी अशोक को और परेशान करती है। जो सामने चल रहा है उदा·सावित्री का मित्र परिवार, किन्नी का बदचलन यह सब अशोक देख रहा है लेकिन कुछ करनें में असमर्थ है। अगर अशोक का स्थान घर में एक जिम्मेदार व्यक्ति का होता तो शायद अशोक इन सब बातों को रोकता। कुछ करने की असमर्थता, आर्थिक दौर्बाल्य से अशोक के व्यक्तित्व में घुटन, तनाव एवं अकेलापन आ गया है। अकेले बैठकर तस्वीरे काटना इसी बात का परिचायक है। अशोक मन ही मन कुढता रहता है। यह अवस्था

बेकारी और प्रेम वंचना की वजह से हो गयी है। बचपन में बच्चों को प्रेम और आस्था की आवश्यकता होती है, इस प्रेम से "आधे अधूरे" का परिवार वंचित है। प्रेम का अभाव परिवार के विघटन का कारण है।

बिना इस परिवार की बड़ी लड़की है। अपनी माँ के प्रेमी मनोज से शादी करती है। प्रथम एक बात महत्वपूर्ण है कि बिना की शादी उसकी मर्जी से हो गयी है, वहाँ बिना संतुष्ट क्यों नहीं है। बिना कहती है उसे पति से कुछ शिकायत नहीं है, फिर भी वह एक अजीब कसमसाहट लेकर जीती है। यह कसमसाहट वह अपने मायके से ले गयी है। मनोज एक उत्तम गृहस्थ होकर भी बिना उससे कुछ भी महसूस करती है। अगर मनोज की भूल हो तो बिना उस पर दोष लगा देती पर असल में प्रश्न यही है कि बिना को शिकायत करने के लिये कारण ही नहीं है। बिना उस सीढी पर चढ़ रही है जिसके अंतिम पायदान पर उसकी माँ सावित्री खड़ी है। बिना बार -बार मायके कुछ खोजने के लिये आती है एक अजीब हवा है जो दम घुटाती है। दरअसल यह हवा नहीं अन्य पारिवारिक सदस्यों के मनोवस्था से बना दुषित माहोल है। ऐसा ही एक बिंदू बीना के मन में घर बना चुका है इसलिए बेवजह बीना मनोज से लड़कर मायके आती रहती है। बीना के घर में शांति, समाधान है लेकिन उसके मन में अशांति है जो घर के वातावरण में दमघोंट बनाती है। बीना के मायके वापस आने पर सावित्री के परिवार की समस्या का उद्‌घाटन होने लगता है। बीना सावित्री की तरह मनचली है। मनोज को वह पूरा आदमी समझती नहीं है। नर और नारी एक रथ के दो पहिये हैं, अनादि काल से एक दूसरे के पूरक रहे हैं। जीवन रूपी रथ इन दो पहियों के बना नहीं चल सकता है। सावित्री के बिना महेन्द्र अधूरा है वैसे मनोज के बिना बीना अधूरी है। ऐसा होने पर भी ये दाम्पत्य एक-दूसरे से अलग और खींचे रहते हैं। खींचाव के कारण इनका जीवन अभावमय हो गया है।

इस नाटक में फ्रायड़, युंग, एडलर के काम सिद्धान्तों का सहारा लिया है। काम कुण्ठा से ग्रस्त सावित्री अनेक मित्र जोड़ती है, घर को अधूरा बना देती है। बीना इसी रास्ते की ओर चलने के लिये बाध्य हो रही है। मनोज से तनावपूर्ण

जीवन से उबकर मायके आ गयी, बीना वापस अपने परिधि में लौटने के लिए विवश है। सावित्री भी हर समय प्रयास करती है कि घर छोडकर कहीं और सुकून पा लेगी। लेकिन वह भी वापस घर आने के लिये विवश है। यही अन्तसंघर्ष दोनों के संवाद और कार्य-कलाप द्वारा व्यक्त होता रहता है।

किन्नी

छोटी लडकी का नाम "किन्नी" है। किन्नी के मन में भी विस्फोट है। बिना का स्वभाव संयमी है लेकिन किन्नी बिना की तुलना में कई गुना ज्यादा विद्रोही है। किन्नी के मन में खीज आकुलाहट और असंतोष है। जिस परिवार में रहती है उस परिवार से सदैव अपमानित होना पडता है। छोटी-छोटी आवश्यकताओं के लिये डाँट, फटकार सुननी पड़ती है। किन्नी का व्यक्तित्व दबे अंगार की तरह है, समय-समय पर वह अपना विरोध प्रकट करती है। बिगडे हुए स्वभाव की दशा किन्नी की वेशभूषा से व्यक्त होती है। चुस्त फ्रॉक पहनना, अपनी उम्र के लिहाज से ज्यादा बोलना इसी बात का परिचायक है कि किन्नी की तरफ ध्यान देने वाला कोई नहीं है। सभी अपनी समस्या में व्यक्त है। किन्नी भी अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढती है। "पोनोग्राफी" की पुस्तके पढ़ना किन्नी की दबित कुण्ठा को व्यक्त करता है। परिवार में जो चल रहा है उसी घटना का कुछ न कुछ असर तो होगा जरूर। किन्नी अपने हिसाब से घरवालों की आलोचना करती है। उसकी नजर में सब मिट्टी के लौंदे है।

कडवाहट, विषाद, परिवार द्वारा अस्वीकार की भावना ने किन्नी को कच्चे उम्र में ही विरोधाभासी जीवन दिया है। किन्नी के खालीपन का अहसास गहरा है। किन्नी समाज के उन बच्चों का प्रतीक है जो माता-पिता से उपेक्षित होने पर असमय योन प्रसंग में रूचि लेकर अपनी समस्या का अन्य मार्ग से समाधान ढूँढते हैं। तेरह वर्ष की किन्नी अपनी उम्र से अधिक परिपक्व है।

इन सब चीजों का कारण है कि, किन्नी माँ के स्नेह से वंचित रही है। फ्रायड़ तथा एडलर ने सिद्ध किया है कि जो बच्चा अपनी माँ से ज्यादा स्नेह पाता है वह सुरक्षितता महसूस करता है। किन्नी, अशोक और बीना का असुरक्षित महसूस करना उनके अन्य कृतियों का मूल कारण है। अन्तसंघर्ष की अभिव्यक्ति है।

"आधे अधूरे" नाटक में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, नियति का दास है। परिस्थिति अत्यंत शक्तिमान है उस पर कोई व्यक्ति काबू करने में असमर्थ है। मानव आन्तारिक व्यक्तित्व द्वारा समस्या को सुलझा सकता है लेकिन अपनी मानसिकता को बदलने में असमर्थ होता है। सावित्री प्रत्येक पुरूष को एक ही माप से तौलती है। चार भिन्न व्यक्तित्व उसे एक-से लगते हैं। अगर महेन्द्र के प्रति मन में स्नेह होता तो अन्य चार पात्रों की ओर सावित्री जाती ही नहीं। पति में पूर्ण व्यक्ति पाने की आकांक्षिणी थी। वास्तव जीवन को स्वीकार कर उससे समाधान ढूँढने के बजाय सावित्री अन्य उलझनों में फँस जाती है। सुख का समाधान स्वयं हमारे मन में होता है। कुछ पाने के बाद और ज्यादा पाने की इच्छा मानव को विनाश की ओर ले जाती है। सावित्री के परिवार का मन ही नहीं घर की बेजान चीजें भी परिवार की मानसिकता व्यक्त करती है।

पूरे नाटक में राकेश का व्यक्तित्व झलकता है। महेन्द्र मित्रों से घिरा, हँसी-मज़ाक करने वाला शख्स है। राकेश के लिये मित्र महत्वपूर्ण थे। राकेश ने पत्नी से स्पष्ट कहा था उसके जीवन में पहला स्थान लेखन का, दूसरा मित्रों का और तीसरा पत्नी को है। ठीक इस तरह महेन्द्र करता है। उसका मित्रों को अहमियत देना सावित्री के अहम् को ठेंस पहुँचाता है। इस नाटक की दो जीवन दृष्टियाँ समानान्तर रेखा की तरह नहीं चलती, गुणा चिह्न के समान एक-दूसरे को काटकर आगे बढ़ना चाहती है। अब इन दो रेखाओं के अंतिम बिंदू इतने दूर हैं कि प्रयत्न करके भी एक दूसरे से मिलने में असमर्थ हैं। महेन्द्र निकम्मा है और सावित्री बहिर्मुखी दोनों मूलतः अलग प्रतिमाएँ हैं।

अपने नाटकों में राकेश का दृष्टिकोण सिर्फ "पुरूष" ही रहा है। जिस प्रकार जैनेंद्र ने नारी प्रधान साहित्य लिखा, प्रसाद ने इतिहास को महत्व दिया, प्रेमचन्द सामाजिक प्रश्नों का अवलोकन करते रहे और अश्क निम्न-मध्यवर्ग का चित्रण करते रहे इसी तरह मोहन राकेश दाम्पत्य जीवन की उलझने और दाम्पत्य की मानसिकता को गहराई से व्यक्त करते रहें।

नाटक के तीनों पुरूष पात्र पलायनवादी हैं। और नारियाँ अपने परिधि से बँधी हैं। कालिदास, नन्द और महेन्द्र समस्या का समाधान करने के लिए संघर्ष नहीं करते वरना पलायन करते हैं और फिर वापस आते हैं। नारियाँ एक बिंदू पर टिक कर अपने हिसाब से समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करती हैं। अपने उत्तरदायित्व से मुँह मोडती नहीं है। नारी यथार्थ का सामना करने की हिम्मत रखती है।

मल्लिका प्रेम के लिये अपना जीवन शून्य बनाती है, सुंदरी अपने अहम् भाव के साथ नन्द को सौन्दर्यपाश में जकड़ कर रखना चाहती है। सावित्री इन दोनों नारियों से अलग और विस्फोटित व्यक्तित्व लेकर संघर्ष करती है। प्रेम से ज्यादा समाज में अस्तित्व के लिये संघर्ष करती है। पुरूष के वापसी पर अपना भविष्य निर्भर नहीं, निर्भिडता से परिस्थिति का सामना करती है। घर में महेन्द्र हो या न हो सावित्री को फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन मल्लिका और अंशतः सुंदरी पर प्रभाव जरूर पड़ता है।

अल्फ्रेड एडलर के विचार देखने से ये तीनों पुरूष पात्र पलायनवादी प्रवृत्ति के लगते हैं - "पलायनवादी व्यक्ति सम्भावित असफलता के डर से संघर्ष में नहीं पड़ता है। वह किसी समस्या को सुलझाने के लिए संघर्ष नहीं करता।"[9]

इस प्रकार इन तीनों नाटकों के अध्ययन के बाद स्पष्ट दीखता है कि राकेश ने वर्तमान जीवन को और मध्यवर्गीय जीवन में रहने वाले पात्रों की मानसिकता को प्रस्तुत किया है। "आषाढ़ का एक दिन" में कालिदास, मल्लिका द्वारा प्रेम का चित्रण प्रस्तुत किया है तो "लहरों के राजहंस" में नन्द और सुन्दरी के माध्यम

से अंतर्द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है। "आधे अधूरे" में तो आज के जीवन का अधूरा-पन मार्मिक रूप से दिखाया है। इसलिए अवधेश चंद्र गुप्त का यह कथन सार्थक लगता है कि, "मोहन राकेश ने अपने नाटकों में वर्तमान जीवन के मध्यवर्गीय व्यक्ति के क्लान्त मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। "आधे अधूरे" में पूर्ण मनुष्य की खोज में संघर्षरत सावित्री का चित्रण मनोवैज्ञानिक है। "आषाढ़ का एक दिन" में प्रेम मनोविज्ञान का चित्रण है। "लहरों के राजहंस" में रूपगर्विता सुंदरी के अंतर्द्वंद्व को स्पष्ट किया है और प्रतिकों के माध्यम से अपने कथ्य को स्पष्ट करने में राकेश सफल हुए हैं।"[10]

राकेशजी की संवेदनशीलता और अनुभव की विविधता के आधार पर, मौलिकता के सहारे नाटक की वस्तु को एक नया आयाम दिया। इसमें मनोवैज्ञानिकता का बड़ा ही महत्व रहा है। मनोविज्ञान अंत में जीवन का ही रूप है। इसे राकेशजी ने नये ढंग से साकार किया है। राकेश का कालिदास और मल्लिका दूर जाते हो, नंद विघटित हो जाता है यही बात महेन्द्र और सावित्री में भी है। राकेश के जीवन अनुभव इन पात्रों के व्यक्तित्व को साकार करते हुए देखने मिलते हैं। कल की प्रतीक्षा, व्यक्तित्व का विघटन, जीवन में अस्तित्व के लिए भागते हुए उस मृग की तरह क्लान्ति से मरना उसे ही राकेश ने नाटकों में प्रस्तुत किया है। इसी दृष्टि ने राकेश को आधुनिक नाटकों का मसीहा बनाया है।

संदर्भ-सूचि

1· "आषाढ़ का एक दिन" - मोहन राकेश, पृ·56

2· वही, पृ·95

3· लहरों के राजहंस - मोहन राकेश, पृ·126

4· मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक - नेमिचन्द्र जैन, पृ·186

5· मनोविश्लेषण के सिद्धान्त और हिन्दी उपन्यास - गिरिधर प्रसाद शर्मा, पृ·47, प्रथम संस्करण

6· वही, पृ·47

7· मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक - संपादक नेमिचन्द्र जैन, पृ·271

8· समकालिन नाट्यसाहित्य और मोहन राकेश के नाटक - सुषमा अग्रवाल,पृ·107

9· मनोविश्लेषण के सिद्धान्त और हिन्दी उपन्यास - गिरिधर प्रसाद शर्मा,पृ·47

10· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : विचार तत्व - अवधेश चंद्र गुप्त, नीरज बुक सेंटर दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984, पृ·153